ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025
Page No.- 101-106
©2025 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

डॉ. जयशंकर शुक्ल

विषय विशेषज्ञ, कोर एकेडमिक यूनिट, परीक्षा शाखा, शिक्षा विभाग, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली - 110054.

Corresponding Author :

डॉ. जयशंकर शुक्ल

विषय विशेषज्ञ, कोर एकेडमिक यूनिट, परीक्षा शाखा, शिक्षा विभाग, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली - 110054.

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ग्रंथ लिपि और इसकी ऐतिहासिक प्राचीनता

सारांशिका : भारतीय लिपियों के क्रमिक विकास के साथ-साथ अनेक भाषाएं आकार लेती हैं, जो आगे चलकर के वाचिक एवं लिखित रुप से ज्ञान को संरक्षित करने की एक महत्वपूर्ण कड़ी बनती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्व में अनुभूतियों को अभिव्यक्तियों तक ले आने के लिए भाषा प्रमुख माध्यम बनता है। वास्तव में सबसे पहले भाषा का व्यवहारिक रुप हमारे सामने आता है। जहां हम अपने अनुभव एवं भावों को एक दूसरे के साथ वाचिक अथवा लिखित रुप में साझा करते हैं। संस्कृत भाषा का उदय कैसे हुआ यह सदा से ही विमर्श का विषय रहा है। किसी भी भाषा के विकास का प्रथम चरण उसकी लिपि के विकास के रुप में देखा जा सकता है। जब हम इन्हीं चीजों को लिखकर के साझा करते हैं तो एक विशेष तरह की प्रतीकात्मक चिह्नों के माध्यम से हम अर्थ कथन रखने का प्रयत्न करते हैं। वह विशेष प्रकार का चिन्ह अपने साथ विशेष प्रकार की ध्वनि को लेकर चलता है। जिसको डीकोड करके हम उसके साथ सही अर्थ को जान एवं समझ सकते हैं। जब हम किसी भाव को वाचिक रुप में साझा करते हैं तो वह ध्वनियों के माध्यम से संभव होता है। और यह ध्वनियां जिन प्रतीकों के द्वारा अपना आकार प्राप्त करती है उनको लिपि अथवा स्क्रिप्ट के नाम से जाना जाता है।

बीज शब्द : चिंतनशील, सनातन मानवीय, कल्याण, प्रशस्त, अध्ययन, संवेदनाओं, लक्ष्यों, संबंध, परिवर्तनकारी, मध्यम मार्ग, प्रेरणा, प्रतिपादन, मित्रता, समन्वय, समीक्षात्मक, माध्यम, सिंधु लिपि, माध्यम, वर्णित, प्रमुख, भावनाओं, विचार, सरलीकरण, कल्याणकारी।

1. अध्ययन का उद्देश्य :

1.1- ग्रन्थ लिपि के विशेष संदर्भ में चिंतनशील अध्ययन के परिवर्तनकारी अनुभव को सभी के लिए प्रेरणा के रूप में प्रदर्शित करें पाठक, समाज परिवर्तन की अपनी यात्रा स्वयं शुरु करें

1.2- ग्रन्थ लिपि, का पठन ज्ञान देने वाला है, मानवीय शांति देने वाला है, अतीत की जानकारी देने वाला है, अतः कल्याणकारी है और जो कल्याणकारी है वही श्रेयस्कर है।

1.3- ग्रन्थ लिपि विश्वकल्याण के लिए मैत्री भावना पर बल देती हैं। ठीक वैसे ही जैसे समकालीन अन्य लिपियों ने मित्रता एवं समन्वय के प्रसार की बात कही है।

1.4- प्राचीन कालीन लिपियों के अध्ययन के द्वारा हम यह मानते हैं कि लिपियों में वर्णित ज्ञान विश्व बंधुत्व एवं मैत्री के सुगंधित पुष्पों की महक से ही संसार में प्रेम व सद्भाव का सौरभ फैल सकता है।

1.5- ग्रन्थ लिपि के पठन के माध्यम से हम यह समकालीन विश्व के अतीत में आपसी जुड़ाव को लेकर कह सकते हैं कि मित्रता ही सनातन नियम है ।

1.6- ग्रन्थ लिपि को पढ़ने के लिए निश्चित रुप से तत्कालीन व्यवस्था का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। ग्रन्थ लिपि एवं सिंधु घाटी की संस्कृति और लिपि अपने आप में भारतीय और भारतीयता को समाए हुए हैं।

1.7- यह निश्चित तौर पर मानवीय संवेदनाओं और लक्ष्यों के मध्य में संबंध में रखते हुए मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते आगे बढ़ती है। इसने मानव मात्र के लिए कल्याण का मार्ग उसके इसी जीवन में प्रशस्त किया है।

2. तर्क : प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रन्थ लिपि के पठन के सामजिक प्रभाव एवं ग्राह्यता पर प्रकाश डालते हुए , इसका समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से सिंधु घाटी की लिपि के माध्यम से वर्णित प्रमुख भावनाओं व विचारों का सरलीकरण एवं इनके उद्देश्य प्रस्फुटित हो सकें |

3. अनुसंधान क्रियाविधि :

3.1- नमूना: नीति दस्तावेज़ और दिशानिर्देश

3.2- उपकरण: गुणात्मक दस्तावेज़ विश्लेषण

3.3- डिज़ाइन: वर्णनात्मक साहित्य समीक्षा

4. अध्ययन के आधार : मुख्य रूप से निष्कर्षों के लिए फॉर्म दस्तावेज़ों में पहले से मौजूद डेटा का उपयोग करता है, जिसकाआशय परंपरागत एवं आधुनिक विश्लेषणों से प्राप्त होता है।

5. प्राथमिक स्रोत :

5.1- मूल संदर्भ ग्रंथ एवं संस्कृत आधार ग्रंथ।

5.2- अनुवाद एवं मूल हिंदी भाषा विज्ञान साहित्य।

6. प्रस्तावना : भारतीय इतिहास की प्राचीन लिपियों में से ग्रंथ लिपि एक मानी जाती हैं। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि लगभग सातवीं-आठवीं शताब्दी वर्ष में ब्राह्मी लिपि से ही ग्रंथ लिपि का उद्भव माना जाता है। “जैसा कि परवर्ती ग्रंथों में उल्लेख किया जा चुका हैं कि समकालीन विश्व में भारतीय लिपियों के उद्भव एवं विकास में एक सशक्त साहित्यिक सांस्कृतिक आधार प्राप्त होता है जो की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट किया जा सकता है।”[1]

भारत की समस्त प्राचीन लिपियों की जननी ब्राह्मी लिपि को ही कहा गया है। विभिन्न पुरातात्विक स्रोतों का अध्ययन करने पर यह सहज ही प्राप्त होता है कि ब्राह्मी लिपि के मूल को सिंधु घाटी की लिपि के माध्यम से भी जाना जा सकता है। “सिंधु घाटी की लिपि में हमें विभिन्न साक्ष्यों यथा- मुहरों, सीलों,

टैबलेटों तथा लेखों में प्राप्त चित्रात्मक पैटर्न को ध्यान से देखने पर लगभग 400 प्रकार की आकृतियां अथवा चिन्ह प्राप्त होते हैं, जिनमें से 39 ऐसे चिन्ह अथवा अक्षर मिले हैं जो 80% बार दोहराए गए हैं।"[2]

यह 39 तरह के अक्षरों अथवा चिह्नों को जब हम उनके मूल को प्रमाण मानते हुए तथ्यों एवं तर्कों के आलोक में हम देखते हैं तो ब्राह्मी लिपि के 45 अक्षरों से उनकी एकरुपता और समरुपता शत प्रतिशत मिलती-जुलती सी प्रतीत होती है।

7- ब्राह्मी लिपि के प्रमुख प्रवाह : "लिपियों के मूल को देखने के क्रम में हमें भाषाओं के विकास पर भी दृष्टिपात करना होगा। सिंधु घाटी की सभ्यता की चित्रात्मक अपठित लिपि से ब्राह्मी लिपि की साम्यता मात्र संयोग नहीं है।"[3]

अपितु यदि इस पर शोध कार्य किया जाए तो यह सत्य के बेहद करीब भी है। कालान्तर में ब्राह्मी लिपि के दो प्रवाह हुए-

7.1- एक उत्तरी ब्रह्मी तथा

7.2- दूसरा दक्षिणी ब्राह्मी।

उत्तरी ब्राह्मी से शारदा, गुरुमुखी, प्राचीन नागरी, मैथिल, नेवारी, बंगला, उडिया, कैथी, गुजराती आदि विविध लिपीयों का विकास हुआ।

जबकि दक्षिण ब्राह्मी से दक्षिण भारत की मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन लिपियाँ अर्थात् तामिल, तेलुगु, मलयालम,ग्रंथ, कन्नडी, कलिंग, तुलु, नंदीनागरी, पश्चिमि तथा मध्यप्रदेशी आदि लिपियों का विकास हुआ।[4]

8- ग्रंथ लिपि एवं शारदा लिपि की समयकालीनता : 8.1- हम जानते हैं कि ग्रंथ लिपि और शारदा लिपि दोनों का ही उद्गम ब्राह्मी लिपि के माध्यम से हुआ है अत: ग्रंथ लिपि को शारदा लिपि के समयकालीन कहा जा सकता है।

8.2- एक कालखंड में भौगोलिक स्थानांतरण के आधार पर यह दोनों लिपियां साहित्य, संस्कृति, इतिहास एवं कला के क्षेत्र में बराबर रूप में पुष्पित और पल्लवित होती रही है।

8.3- इसका चलन विशेषरुप से दक्षिणभारत के मद्रास रियासत, विजयनगर, कांचीपुरम, त्रिचनापल्ली, मदुरई, त्रावनकोर, वक्कलेरी, वनपल्ली, तिरुमल्ला आदि प्रदेशों में अधिक रहा।

8.4- जिस समय उत्तर भारत में विशेषकर कश्मीर प्रान्त में शारदा लिपि फल-फूल रही थी उसी समय दक्षिण भारत में इस लिपि का विकास हुआ।

9- ग्रंथ लिपि की लेखन प्रक्रिया में उपयुक्तता :

9.1- ग्रंथ लिपि ताड़पत्र पर लिखने के लिए सबसे उपयुक्त लिपि मानी गई है। विदित् हो कि लिपि ताडपत्र पर शिलालेख, ताम्रलेख आदि की तरह नुकीली कील द्वारा खोदकर लिखी जाती थी।[5] तत्पश्चात उन अक्षरों में काली स्याही भरने का विधान था।

9.2- इस लेखन पद्धति का सबसे बडा फायदा यह है कि यदि उन ताड़पत्रों की स्याही फीकी पड़ जाये अथवा उड जाये तो भी अक्षर विद्यमान रहते हैं।

9.3 उन अक्षरों में पुन: स्याही भरी जा सकती है। आज भी कई ग्रंथागारों में ग्रंथ-लिपिबद्ध अनेकों ग्रंथ ऐसे मिलते हैं जिनके अक्षरों में स्याही नहीं भरी है, केवल ताडपत्र पर अक्षरों को खोदकर लिख दिया गया है।[6] लेकिन उन्हें पढ़ा जा सकता है, विषय-वस्तु का लिप्यन्तर भी किया जा सकता है।

10- ग्रंथ लिपि एवं लेखन सामग्री का विकास :

10.1- सभी: ग्रंथों को लिखने अथवा लिखवाने वाले के पास स्याही का अभाव रहा होगा, जिस कारण ताड़पत्रों पर ग्रंथ लिखकर छोड दिया गया होगा और अक्षरों में स्याही नहीं भरी जा सकती होगी।[7]

10.2 उस समय ग्रंथ लेखन हेतु स्याही, ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज कपड़ा, कलम आदि ग्रंथ लेखन-

सामग्री एकत्रित करना इतना सरल नहीं था।

10.3- तत्कालीन स्याही अथवा विविध रंग आदि बनाने के लिए प्राकृतिक वस्तुओं जैसे भांगुरा, गोंद, लोह, विविध वृक्षों की छाल, पुष्प, पत्ती, गुठली आदि का स्तेमाल किया जाता था।[8] जिसके कारण ये रंग अथवा स्याही चिरकाल पर्यन्त स्थाई रह सके। इसका प्रमाण हमारे ग्रन्थाकारों में विद्यमान प्राचीन पाण्डुलिपियों को देखने मात्र से मिल जाता है।

10.4- विविध प्राचीन ग्रंथों में स्याही, ताडपत्र, कागज आदि लेखन-सामग्री तैयार करने विषयक उल्लेख भी मिलते हैं। जिनमें काला भांगुरा तथा बबूल के गोंद का वर्णन करते हुए तो यहाँ तक कहा गया है कि- 'गोंद संग जो रंग भांगुरा मिले तो अक्षरे-अक्षरे दीप जले'।[9]

10.5- आज भी इस बात के पूर्णत:स्पष्ट साक्ष्य विद्यमान हैं। हमारे ग्रंथकारों में ऐसे अनेकों ग्रंथ संगृहीत हैं जिनका आधार (कागज का ताडपत्र) पीला पड गया है अथवा पूर्णत: जीर्ण हो चुका है लेकिन उस पर उत्कीर्ण अक्षरों की स्याही आज भी चमकती हुई दिखाई पड़ती है।[10] ऐसा लगता है 'मानो कि प्रत्येक अक्षर दीपक की तरह चमक रहा हो' ।

11. ग्रंथ-लिपिबद्ध ताड़पत्रों की विशेषताएं :

ग्रंथ-लिपिबद्ध ताड़पत्रों की एक विशेषता यह भी है कि, यदि ग्रंथों पर लंबे समय से बेदरकारी के कारण अत्यन्त धूल-मिट्टी अथवा कालिख जमा हो गई हो तो इन्हें पानी से धोया भी जा सकता है। विदित् हो कि ऐसा काने से लिखे हुए अक्षरों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। लेकिन ऐसा करते समय पाण्डुलिपि विशेषज्ञों का मार्गदर्शन लेना चाहिए।[11] क्योंकि इस प्रक्रिया में विशेष ध्यान रखना होता है कि उन पत्रों को धोने के बाद सुखाने के लिए आवश्यकतानुसार योग्य ताप एवं नमी प्रदान किया जाये। अस्तु प्राचीन भारतीय इतिहास एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, संपादन एवं पुन: लेखन में ग्रंथ-लिपिबद्ध साहित्य की अहम भूमिका रही है। इस लिपि में लिखित सामग्री मूल पाठ के निर्धारण एवं कर्तु: अभिप्रेत शुद्ध आशय तक पहुँचने में प्रामाणिक और महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत् करती है।[12]

इसके नामकरण एवं उद्भव और विकास विषयक विविध अवधारणाएँ निम्नवत् हैं-

12. ग्रंथ लिपि नामकरण : ग्रंथ लिपि का निर्माण दक्षिण भारत में संस्कृत के ग्रंथ लिखने के लिए हुआ। क्योंकि वहाँ प्रचलित तामिल लिपि में अक्षरों की न्यूनता के कारण संस्कृत भाषा लिखी नहीं जा सकती। प्राचीन तामिल लिपि में सिर्फ अठारह व्यंजन वर्णों का चलन है, जिनसे तामिल भाषा का साहित्य तों लिखा जा सकता है लेकिन संस्कृत भाषाबद्ध साहित्य लिखना संभव नहीं । अत: संस्कृत के ग्रंथ लिखने के लिए इस लिपि का अविष्कार हुआ।[13]

संभवत: इसी कारण इसे ग्रंथ लिपि (संस्कृत ग्रंथों की लिपि) नाम दिया गया । इस लिपि के अक्षरों का लेखन करते समय एक ग्रन्थि (गांठ) जैसी संरचना बनाकर अक्षर लिखने की परंपरा मिलती है, जिसके कारण भी इसका नाम ग्रन्थि लिपि पड़ने की संभावना है। विदित् हो कि दक्षिण क्षेत्र के लेखक अपने अक्षरों में सुन्दरता लाने के लिए अक्षर-लेखन में प्रयुक्त होने वाली लकीरों (खडीपाई एवं पडीपाई) को वक्र और मरोडदार बनाते थे। इन लकीरों के आरंभ, मध्य या अन्त में कहीं-कहीं ग्रन्थियाँ भी बनाई जाती थीं।[14] इन्हीं कारणों से इस लिपि के अक्षरों की संरचना ग्रन्थि (गाँठ) के समान बनने लगी और धीरे-धीरे इसके अक्षर अपनी मूल ब्राह्मी लिपि से भिन्न होते चले गये।

13. ग्रंथ लिपि की रचना प्रक्रिया :

13.1- अनुस्वार अंकन की परंपरा को ध्यान में रखते हुए इस लिपि में अनुस्वार को अक्षर के ऊपर न लिखकर उसके सामने लिखा जाता है। समकालीन रचनात्मकता में लेखन के अंतर्गत ब्राह्मी लिपि में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई है।

13.2- इस लिपि में 'आ, उ, ऊ, ऋ, ए,ऐ, ओ, औ' की

मात्राएँ अक्षर के आगे या पीछे समान्तर भूत से आवश्यकता के अनुरुप लगाई जाती हैं। अर्थात उपरोक्त मात्राओं में से कोई भी मात्रा अक्षर के ऊपर या नीचे नहीं लगती है।

13.3- इस लिपि में संयुक्ताक्षर लेखन हेतु अक्षरों को ऊपर-नीचे लिखने की परंपरा मिलती है। अर्थात् संयुक्ताक्षर लिखते समय जिस अक्षर को पहले बोला जाये या जिस अक्षर को आधा करना हो उसे ऊपर तथा बाद में बोले जाने वाले दूसरे अक्षर को उसके नीचे लिखा जाता है।

13.4- ग्रंथ लिपि की ही तरह ब्राह्मी लिपि में भी संयुक्ताक्षर लेखन हेतु यही परंपरा मिलती है। प्राचीन-नागरी-लिपिबद्ध पाण्डुलिपियों में भी कुछ संयुक्ताक्षर इसी प्रकार ऊपर के नीचे की ओर लिखे हुए मिलते हैं।[15]

13.5- इस लिपि में रेफ सूचक चिह्न उस अक्षर के नीचे से ऊपर की ओर लगाया जाता है। जबकि दीर्घ 'ई' की मात्रा आधुनिक नागरी लिपि में प्रचलित रेफ की तरह लगती है तथा ह्रस्व 'ई' की मात्रा आधुनिक नागरी में प्रचलित दीर्घ 'ई' की मात्रा की तरह लगती है।

14. ग्रंथ लिपि की विशेषताएँ :

1. अपनी संरचना प्रवाह ओम आकृति के आधार पर यह लिपि ब्राह्मी तथा अन्य भारतीय लिपियों की तरह बायें से दायें लिखी जाती है।
2. अपनी रचनात्मक लेखन प्रक्रिया के द्वारा ताड़पत्रों पर लिखने के लिए यह लिपि सर्वाधिक उपयोगी, सरल और सटीक लिपि मानी गयी है।
3. इस लिपि में अनुस्वार, अनुनासिक एवं विसर्ग हेतु स्वतंत्र चिह्न प्रयुक्त हुए हैं जो आधुनिक लिपियों में भी यथावत् स्वीकृत हैं।
4. भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस लिपि में व्याकरण-समस्त उच्चारण स्थानों के अनुसार वर्णों का ध्वन्यात्मक विभाजन है।
5. इस लिपि का प्रत्येक अक्षर स्वतंत्र रुप से एक ही ध्वनि का उच्चारण प्रकट करता है, जो सुगम और पूर्णरुप से वैज्ञानिक है।
6. इस लिपि के अक्षरों का आकार समान है व शलाका प्रविधि से टंकित करने का विधान मिलता है। # अक्षरों की बनावट ग्रन्थि के आकार की है।
7. ग्रंथ लिपि के आधार पर लेखन प्रक्रिया के अंतर्गत प्रत्येक अक्षर में एक सूक्ष्म ग्रन्थि बनाकर लिखने की परंपरा है।
8. इस लिपि के अक्षर लेखन की दृष्टि से सरल माने गये हैं, जिन्हें ताड़पत्रों पर गतिपूर्वक शुद्धता से लिखा जा सकता है।
9. रचना लेखन एवं पठन की विविधता आधारित इस लिपि के समस्त अक्षर सलंग्र, समानान्तर और अलग-अलग लिखे जा सकते हैं।

15. निष्कर्ष एवं प्राप्तियां :

15.1- इस लिपि का ज्ञान भारतीय ज्ञान परंपरा में वर्णित तथा प्रचलित अन्य प्राचीन लिपियों को सरलता पूर्वक सीखने-पढ़ने एवं ऐतिहासिक तथ्यों को समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

15.2- इस लिपि में लिखित ग्रंथ संपदा को शुद्ध पाठ की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि यह लिपि कागज पर लिखने की परंपरा से प्राचीन है तथा इसमें पाठान्तर की संभावना कम रहती है।

15.3- साहित्यिक एवं सांस्कृतिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस लिपि में विपुल साहित्य लिखा हुआ मिलता है।

15.4- यह लिपि ताड़पत्रों पर शिलालेख एवं ताम्रलेख आदि की तरह लोहे की नुकीली कील द्वारा खोदकर लिखी जाती है।

15.5- इस लिपि में शिरोरेखा का चलन नहीं है। ब्राह्मी तथा गुजराती लिपियाँ भी शिरोरेखा के बिना ही लिखी जाती हैं। लेकिन शारदा, नागरी आदि लिपियों में

शिरोरेखा का चलन है।

15.6- इस लिपि में समस्त उच्चारित ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र एवं असंदिग्ध चिह्न विद्यमान हैं। अत: इसे पूर्णत: वैज्ञानिक लिपि कहा जा सकता है।

15.7- अपने प्राचीन गौरव एवं उपयोगिता के आधार पर आज भी भारत का शायद ही कोई ऐसा ग्रंथागार होगा जिसमें ग्रंथ-लिपिबद्ध पांडुलिपियों का संग्रह न हो।

15.8- साहित्य संस्कृति एवं कला के संवर्धन में प्रवृत्त इस लिपि में निबद्ध ग्रंथ अमूल्य निधि के रूप में माने गये हैं, जो अपने संग्रहालय की शोभा में मोती माणिक्य लगा देते हैं।

15.9- लेखन पठान एवं प्रस्तुति को आधार मानते हुए यह कहा जा सकता है कि इस लिपि में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाबद्ध साहित्य को शत प्रतिशत शुद्ध लिखा जा सकता है।

15.10- ग्रंथ लिपि की वर्णमाला शिलाखण्डों, ताड़पत्रों, ताम्रपत्रों एवं लोहपत्रों आदि पर उत्कीर्ण इस लिपि में प्रयुक्त स्वर एवं व्यंजन वर्णों की संरचना बहुत ही विशिष्ट है।

संदर्भ सूची :

1. 'ललितविस्तर' एक समीक्षात्मक अध्ययन, लेखक- डॉ रामबली, प्रकाशक- कला प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन वर्ष 1995.
2. E. J. Thomas, 'Lalitavistara and Sarvastivada', Indian Historical Quarterly, Vol. XVI (1940);
3. G. K. Nariman, Literary History of Sanskrit Buddhism (Bombay, 1922);
4. Maurice Winternitz, History of Indian Literature (Vol. II, translated into English by Mrs. S. Ketkar and Miss H. Kohn (2nd Edition, delhi, 1972);
5. ललितविस्तार, अनुवादक -शांति भिक्षु शास्त्री,प्रकाशक -उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान (हिंदी ग्रंथ अकादमी) लखनऊ, प्रकाशन वर्ष -2016.
6. प्रज्ञापना सूत्र : एक समीक्षा, लेखक- श्री पारसमल संचेती, प्रकाशक- जिनवाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2001.
7. प्राचीन भारतीय लिपि एवं अभिलेख, लेखक- डॉ. गोपाल यादव
8. ब्राह्मी सिक्के कैसे पढ़े, लेखक- श्री प्रदीप दत्तुजी बनकर
9. भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला, लेखक-मुनि श्री पुण्यविजयी म.सा.
10. ग्रंथ लिपि वर्णमाला- डॉ. एस.जगन्नाथ जी, अड्डयार पुस्तकालय, मैसूर।
11. पाण्डुलिपि विज्ञान, लेखक-डॉ. सत्येन्द्र जी, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर से प्रकाशित
12. शारदा मंजूषा, संपा, डॉ. अनिर्वाण दास, वाराणसी से प्रकाशित श्रुतसागर,15 जुलाई, 2014
13. प्रज्ञापना सूत्र : सम्पादक नेमिचन्द बांठिया पारसमल चण्डालिया, प्रकाशक -श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर, प्रकाशन वर्ष -2008.
14. समवायांग सूत्र, संपादक युवाचार्य मिश्रीमल जी मधुकर, अनुवादक - पं हीरालाल शास्त्री, प्रकाशक- आगम प्रकाशन समिति राजस्थान.
15. भगवतीसूत्र (व्याख्या प्रग्यप्ति) हिंदी अनुवाद, संपादक गम मनीषी प्रोफेसर महेंद्र कुमार, प्रकाशक- जैन विश्व भारती लाडनूं, राजस्थान प्रकाशन वर्ष -2013.

•